साहित्य में वर्जनाओं की जंजीरें टूट चुकी हैं

कमल किशोर गोयनका से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत

❑ सुधा ओम ढींगरा

बचपन से सुना था, परिवार दो तरह के होते हैं। एक जन्म से मिलता है, दूसरा बाद में बनता है। मेरा मन शुरू से ही बेहद जिज्ञासु रहा है। छुटपन में सुनी बहुत-सी बातें बड़े होने पर मैं समझने की कोशिश करती थी। ज्योंही मैंने युवावस्था में पग धरा, इस बात को जानने की उत्सुकता जाग्रत हुई कि दो तरह के परिवार कैसे होते हैं? परिवार तो एक ही होता है। खून के रिश्तों के साथ मुंह बोले और दिल से स्वीकृत रिश्ते जब जुड़ जाते हैं तो परिवार का विस्तार हो जाता है; पर परिवार दो नहीं होते। जीवन की तेज रफ्तार ने अनुभव भी मेरी झोली में तेजी से डाले। एक के बाद एक खून के रिश्ते छूटते गये और मुंह बोले रिश्ते जुड़ गये। अब दिल के रिश्तों का ही परिवार है मेरा। बचपन में सुनी बात अब समझ में आयी। डॉ. कमल किशोर गोयनका, जिनसे मैं आपका परिचय करवाने जा रही हूं, मेरे दूसरे परिवार से हैं।

डॉ. साहब का पहला फोन कैसे भूल सकती हूं; जो न्यूजर्सी से उन्होंने किया था...वे अपने बेटे के पास आये हुए थे और डॉ. अंजना सुधीर ने उन्हें मेरा फोन नम्बर दिया था। परिचय होते ही हम सहज हो गये; प्रेमचन्द हम दोनों के प्रिय लेखक हैं और बातचीत का केन्द्रबिन्दु वही थे। डॉ. साहब और प्रेमचन्द तो घुले-मिले हैं और एम.ए. में मेरा शोध पत्र 'प्रेमचन्द के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना' पर था। बातचीत प्रेमचन्द से शुरू हुई और आज भी हम उनके बारे में बात जरूर

प्रोफेसर कमल किशोर गोयनका

करते हैं, कभी प्रेमचन्द की किसी कहानी पर या डॉ. कमल किशोर गोयनका की पुस्तक 'प्रेमचन्द की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' को लेकर। प्रेमचन्द से इतर प्रवासी साहित्य को लेकर हमारा खूब विमर्श होता है। 'हिन्दी का प्रवासी साहित्य' ग्रन्थ डॉ. साहब का सराहनीय कार्य है।

डॉ. गोयनका के मैंने कई इंटरव्यू लिए, उन्हें खूब कुरेदा, उनसे अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर तलाशे। चिन्तन के लिए दूरभाष पर लम्बा-लम्बा वार्तालाप हुआ। वे हमेशा सहज-सरल, शांत, गम्भीर, सन्तुलित रहे। कभी उग्र या उत्तेजित नहीं हुए। मेरे किसी प्रश्न पर तल्ख नहीं हुए। डॉ. गोयनका जी के व्यक्तित्व का एक और हिस्सा; जिसे देखकर मैं दंग रह जाती हूं, नाजुक से नाजुक परिस्थितियों में उनका गजब का मानसिक सन्तुलन। बेहद विनम्र डॉ. कमल किशोर गोयनका की सरलता और सादगी को नमन करते हुए, प्रस्तुत है उनसे हुई बातचीत :

सुधा ओम ढींगरा : गोयनकाजी, आपका जन्म तो एक मारवाड़ी परिवार में हुआ, फिर साहित्य की तरफ आपका रुझान कैसे हुआ? वे कौन से आरम्भिक प्रेरणा स्रोत थे, जिन्होंने आपको साहित्य-पथ का पथिक बनाया।

कमल किशोर गोयनका : सुधा जी, आप ठीक कहती है, मेरा जन्म एक मारवाड़ी परिवार में हुआ, जो व्यापारी था और पुश्तैनी जमींदारी थी, परन्तु बी.ए. के शिक्षण काल से ही मुझमें साहित्य के संस्कार उत्पन्न होने लगे। मेरे पिताजी का बड़ा पुस्तकालय था और मेरे माता-पिता को स्वाध्याय का बड़ा शौक था। मैंने इस पुस्तकालय से धार्मिक और सामाजिक साहित्य पढ़ा और 'मर्यादा', 'प्रभा', 'चांद', 'माधुरी', 'हंस' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाएं तो पढ़ी हीं।

मैं समझता हूं, साहित्य की ओर आने की प्रवृत्ति ईश्वर ने ही प्रदान की, किन्तु इस पारिवारिक परिवेश ने उसे मजबूत बनाया। बी.ए. करते समय एक कवि गोष्ठी में जयशंकर प्रसाद बना था और 'आंसू' के कुछ पदों का मैंने पाठ किया था। बस साहित्य का प्रेम ही दिल्ली ले आया और हिन्दी साहित्य से एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके उपरांत वर्ष 1962 में मैं हिन्दी में प्राध्यापक बना और फिर साहित्य ही मेरा जीवन बन गया।

सुधा ओम ढींगरा : आपने अपने साहित्य प्रेम को पहचाना और साहित्य आपका जीवन बन गया, परन्तु अध्ययन और अनुसन्धान का विषय 'प्रेमचन्द' ही क्यों चुना?

कमल किशोर गोयनका : मुझे अब लगता है कि नियति ने ही मुझे इसके लिए चुना था। मैं एम.ए. (1961) करने के बाद पी-एच.डी. के लिए शोध विषय के चयन की समस्या से जूझ रहा था। उस समय डॉ. नगेन्द्र हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे और उनसे बातचीत करने में विद्यार्थी डरते थे। मेरे प्रति वे कुछ उदार थे, क्योंकि मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। मैंने आपको बताया है कि मैं जयशंकर प्रसाद का प्रेमी था और मैंने बातचीत में उनसे जयशंकर प्रसाद पर कार्य करने का प्रस्ताव किया, किन्तु वे तैयार नहीं हुए। इस पर मैंने उन्हें प्रेमचन्द पर कार्य करने की इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने मुझसे कुछ विषय लिखकर लाने को कहा तो मैंने प्रेमचन्द पर उन्हें सोलह विषय लिखकर दिए और उन्होंने 'प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प-विधान' विषय पर अपनी स्वीकृति प्रदान की। डॉ. नगेन्द्र के इस निर्णय ने मेरा भविष्य तय कर दिया, किन्तु मैं पी-एच. डी. करने के बाद अन्य शोधार्थियों की तरह चुप बैठने को तैयार नहीं था।

सुधा ओम ढींगरा : तो आपने अन्य शोधार्थियों से अलग क्या किया?

कमल किशोर गोयनका : मुझे सन् 1972 में पी-एच.डी. की उपाधि मिली और कुछ समय बाद ही 'प्रेमचन्द : विश्वकोश' (पांच खंड) की योजना की परिकल्पना की और प्रेमचन्द के बड़े पुत्र श्रीपतराय का सहयोग लिया और प्रेमचन्द की अज्ञात-अप्राप्य रचनाओं, पत्रों, पाण्डुलिपियों, दस्तावेजों की खोज में लग गया। आरम्भ में गंगाप्रसाद विमल भी मेरे साथ थे, परन्तु वे प्रगतिशील थे और उस समय नये-नये बने प्रगतिशील डॉ. सुधीश पचौरी ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' के एक अधिवेशन में मुझे जैसे 'गाय छाप' तथा 'हिन्दू' के साथ सहयोग करने पर उनकी भर्त्सना की और कहा कि विमल को उस अपराध में 'प्रगतिशील लेखक संघ' से निकाल बाहर करना चाहिए। इस पर विमल इतने भयभीत हुए कि उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया। यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। यदि विमल मेरे साथ रहते तो उनकी तथाकथित प्रगतिशीलता बाधक ही बनती। मैं अब पूरी तौर पर प्रेमचन्द के प्रति समर्पित हो गया और मेरे मन में प्रेमचन्द को लेकर तरह-तरह की कल्पनाएं जन्म लेने लगीं। इसके बाद 'प्रेमचन्द : विश्वकोश' (दो खंड) सन् 1981 में छपे और जितना व्यापक उसका स्वागत हुआ, उसने तो मुझे हमेशा के लिए प्रेमचन्द का बना दिया।

सुधा ओम ढींगरा : चलो अनुसन्धान के लिए प्रेमचन्द जी को चुन लिया, पर आपने तो जीवन की हर ऋतु प्रेमचन्द साहित्य को दे दी। ऐसा क्या है प्रेमचन्द साहित्य में। आजकल तो इस पर बहुत से आक्षेप लगाए जा रहे हैं और कई तरह की भ्रांतियां फैलाई जा रही हैं।

कमल किशोर गोयनका : आपके इस प्रश्न का क्या उत्तर दूं? मैंने प्रेमचन्द पर काम करते समय यह कभी नहीं सोचा कि मेरे जीवन की कितनी ऋतुएं, कितने वसंत व्यतीत हो गये। धुन भी तो यही कि यह काम पूरा होना चाहिए, जिससे दूसरे काम पर लगूं। अब जब मैं 78 वर्ष का हो रहा हूं तो समय का, ऋतु का बोध अवश्य रहता है कि समय अब कम है और काम बहुत है, किसी भी बड़े काम में आपको अपनापन, अपना अस्तित्व एवं काल-बोध विस्मृत करना होता है, सम्भवतः इसे ही समाधि की दशा कहा गया है। इसमें जन्म-मृत्यु, रात-दिन आदि की चेतना विलुप्त हो जाती है और बस काम ही काम और लक्ष्य ही ध्यान में रहता है। यह स्थिति इसलिए बनी कि प्रेमचन्द-साहित्य आपको अपने में लीन कर लेता है, आप प्रेमचन्दमय हो जाते है, प्रेमचन्द को जब आप उनकी दृष्टि से देखते हैं और अपने विचारों का उन पर आरोपण नहीं करते तो प्रेमचन्द अपने सारे दरवाजे खोलकर आपके मन में बैठ जाते हैं कि फिर आप प्रत्येक वस्तु में उनकी ही छवि देखते हैं। कालिदास, तुलसीदास और प्रेमचन्द का साहित्य ऐसा ही है, जिसमें गहरे उतर कर ही मोती तलाश किए जा सकते हैं। जहां तक प्रेमचन्द पर लगे आक्षेपों और फैलाई जाने वाली भ्रांतियों का सवाल है, ऐसा अधिकांश बड़े लेखकों के साथ होता है। अज्ञेय को हिन्दी के प्रगतिशील लेखक व्यक्तिवादी तथा अमेरिकन एजेन्ट कहते रहे हैं, किन्तु डॉ. नामवर सिंह जैसे प्रगतिशील भी उन्हें बड़ा लेखक मान रहे हैं। प्रेमचन्द पर दलित लेखक कई प्रकार के आरोप लगा रहे हैं, उन्होंने 'रंगभूमि' उपन्यास को जलाया भी, किन्तु प्रेमचन्द की महानता और कालजयीत्व अक्षुण्ण रहेगा। उन जैसा कोई दूसरा लेखक हिन्दी में क्या, किसी भारतीय भाषा में नहीं है।

सुधा ओम ढींगरा : आपके प्रेमचन्द सम्बन्धी शोध कार्यों से देश-विदेश में आपको खूब प्रतिष्ठा मिली, किन्तु भारत के कुछ प्रगतिशील लेखकों ने आपके कार्य की या तो उपेक्षा की है या उसकी तर्कहीन आलोचना की है। इन प्रगतिशीलों का आपके प्रति ऐसे आक्रोश तथा उपेक्षा का क्या कारण है?

कमल किशोर गोयनका : सुधा जी; आप ठीक कहती हैं कि मेरे प्रेमचन्द सम्बन्धी कार्यों की देश-विदेश में खूब प्रशंसा हुई है। भारत में जैनेन्द्र, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, चन्द्रकान्त वांदिवडेकर, विष्णु कान्त शास्त्री, कल्याणमल लोढ़ा, अमृतराय, अमृत लाल नागर, इंद्रनाथ मदान, रमेश कुंतल मेघ, गोपाल राय, देवेश ठाकुर, पुष्पपाल सिंह, विनय, मृणाल पाण्डे, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, विजय बहादुर सिंह, रमेश दवे, बालशौरि रेड्डी, कृष्णदत्त पालीवाल, रवीन्द्रनाथ त्यागी, प्रदीप पंत, श्रीभगवान सिंह, चन्द्रकांता,

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी और विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज के साथ डॉ. कमल किशोर गोयनका

शंभूनाथ और न जाने कितने लेखकों ने मेरे कार्यों पर लिखा है और विदेश में इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी ने अपनी 'प्रेमचन्द पुस्तिका (1980) में, प्रो. गोविन्द नारायण ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'मुंशी प्रेमचन्द' (1978) में जो अमेरिका के बोस्टन स्थित प्रकाशन जी.के. हॉल एंड कम्पनी ने प्रकाशित की थी, प्रेमचन्द के विशेषज्ञ के रूप में मेरा उल्लेख किया है। ध्यान रहे, तब तक मेरा 'प्रेमचन्द : विश्वकोश' (1981) छपा नहीं था। जर्मनी के प्रो. लोठार लुत्से के आग्रह पर मेरी एक पुस्तक 'प्रेमचन्द : शतरंज के खिलाड़ी' के वे सह-लेखक बने, जो प्रेमचन्द शताब्दी वर्ष 1980 में पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली से छपी थी। सुधा जी, डॉ. लुत्से से मेरी भेंट कोलकाता में हुई थी 1979 में और वे मेरे प्रेमचन्द सम्बन्धी कार्यों के प्रशंसक बन चुके थे। जर्मनी में हिन्दी प्रोफेसर तातियाना ओरन स्केइया ने सन् 2004 में मेरे पर एक लेख लिखा था, जो जर्मन पत्रिका में छपा था। इटली के प्रोफेसर अमबर्टो नरदेला (नेपल्स, इटली) ने 'कफन' कहानी के अंग्रेजी अनुवादों पर एक पुस्तक इटेलियन भाषा में लिखी; जिसका इटेलियन में शीर्षक हैं—'IL RACCONTO PIU FAMOSO DELLE LETTERATURE URDU E HINDI KAFAN' इसका प्रकाशन नेपल्स से 1998 में हुआ और 278 पृष्ठ की यह शोध-पुस्तक मेरे द्वारा प्रदत्त सामग्री के आधार पर लिखी गयी। मॉरिशस में अभिमन्यु अनत ने वहां के अंग्रेजी-हिन्दी अखबारों एवं पत्रिकाओं में मेरे साहित्यिक कार्यों पर लेख लिखे। यह मैंने आपको एक संक्षिप्त-सा विवरण दिया है। प्रगतिशीलों के आक्रोश का एक बड़ा कारण यह भी है कि उन्होंने प्रेमचन्द पर जो मार्क्सवादी एकाधिकार बनाया था, जो तथ्यहीन एवं तर्कहीन मिथक गढ़े थे, मेरे शोध निष्कर्षों से छिन्न-भिन्न हो गये। विगत कई दर्शकों से प्रत्येक प्रगतिशील एक ही प्रकार की व्याख्या करता था, कोई नयी बात कहने की सम्भावना ही समाप्त कर दी थी। ये नहीं चाहते थे कि प्रेमचन्द पर कोई अप्रगतिशील काम करे और उनके भ्रामक निष्कर्षों तथा प्रेमचन्द की इस्तेमाल करने की राजनीतिक साजिश को निरावृत करें। प्रगतिशीलों ने मेरे साथ कुछ नया नहीं किया। इन्होंने हिन्दी के अनेक लेखकों का ऐसा ही चरित्रहनन तथा अपमान किया है, यहां तक कि उन्होंने डॉ. रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री तक को अपमानित किया और उनकी निन्दा की।

सुधा ओम ढींगरा : प्रेमचन्द के बाद आपने प्रवासी साहित्य पर काम किया है। प्रवासी साहित्य पर कई पुस्तकें और 'हिन्दी का प्रवासी साहित्य' ग्रन्थ भी लिखा है। आपका रुझान और लगाव हिन्दी के प्रवासी साहित्य के प्रति कैसे हुआ?

कमल किशोर गोयनका : हुआ यह कि वर्ष 1980 में प्रेमचन्द जन्म-शताब्दी पर मैंने दिल्ली में 'प्रेमचन्द जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति' का गठन किया। जैनेन्द्र कुमार इसके अध्यक्ष थे और मैं महामंत्री तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा

गांधी इसकी संरक्षक थीं। मेरी प्रेरणा में मॉरिशस में प्रेमचन्द जन्म-शताब्दी का समारोह आयोजित हुआ और भारत सरकार ने मुझे और जैनेन्द्र को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। मैंने मॉरिशस में प्रेमचन्द के मूल दस्तावेजों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफों की एक प्रदर्शनी लगाई, जिसका उद्घाटन प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर राम गुलाम ने किया। इसी समय मेरी भेंट अभिमन्यु अनत तथा अन्य प्रतिष्ठित लेखकों से हुई। वहां मैं हिन्दी लेखकों के प्रेम से इतना अभिभूत हुआ कि लौटते समय मैंने संकल्प किया कि मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के भारत में प्रचार-प्रसार तथा प्रतिष्ठा के लिए जीवन-पर्यन्त काम करता रहूंगा। उसके बाद मैं आज तक मॉरिशस, अमेरिका, इंग्लैंड, सूरीनाम आदि देशों में भारतवंशियों एवं प्रवासी भारतीयों द्वारा हिन्दी में रचे साहित्य के प्रचार-प्रसार तथा प्रतिष्ठा के लिए निरन्तर काम काम करता रहा हूं। हिन्दी के प्रवासी साहित्य से मुझे प्रेमचन्द जैसा ही प्रेम हो गया है।

सुधा ओम ढींगरा : सम्भवतः आप अकेले ऐसे आलोचक और शोधकर्मी हैं, जो विदेशों में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य को इतनी गम्भीरता से लेते हैं। विदेशों में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य को प्रवासी साहित्य कहकर मुख्यधारा से दूर किया जा रहा है। विदेशों में हिन्दी के बहुत से लेखक प्रवासी साहित्यकार कहलवाना पसन्द नहीं करते, साहित्य कभी प्रवासी नहीं होता। इन्सान प्रवास में रहता है। भारतवंशी सोचते हैं कि प्रवासी साहित्यकार कहकर उन्हें हाशिये पर डाला जा रहा है, उनका मूल्यांकन सही नहीं हो रहा। आपने प्रेमचन्द और प्रवासी साहित्य पर अपना जीवन होम कर दिया। आप उनकी इस वेदना को कहां तक महसूस करते हैं?

कमल किशोर गोयनका : यह सही है कि प्रेमचन्द के बाद मैंने प्रवासी साहित्य पर विशेष कार्य किया है। हिन्दी में मैं पहला लेखक हूं, जिसकी 7 पुस्तकें हिन्दी के प्रवासी साहित्य पर प्रकाशित हुई हैं—'अभिमन्यु अनत : एक बातचीत' (1985), 'अभिमन्यु अनत : समग्र कविताएं' (1998), 'अभिमन्यु अनत : प्रतिनिधि रचनाएं' (1999), 'मारीशस की हिन्दी कहानियां' (2000), 'मारीशस के राष्ट्र-कवि ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' काव्य-रचनावली' (2003) तथा 'हिन्दी का प्रवासी साहित्य' (2011)। इन सात पुस्तकों के अतिरिक्त प्रवासी साहित्य के तीन खंड भी प्रकाशित हुए हैं। मैंने भारत से निकलने वाली पत्रिकाओं, 'साक्षात्कार' (भोपाल), 'शब्द योग' (नयी दिल्ली), 'राजभाषा मंजूषा (नयी दिल्ली), 'बुलंद-प्रभा' (बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश) आदि के प्रवासी साहित्य विशेषांक निकलवाए हैं और कुछ अन्य पत्रिकाएं भी मेरी प्रेरणा पर ऐसे ही विशेषांक निकाल रही हैं। अब मैं आपके प्रवासी साहित्य के नामकरण तथा उस पर कुछ प्रवासी लेखकों की आपत्ति के प्रश्न को लेता हूं।

यह ठीक है, साहित्य प्रवासी नहीं होता, किन्तु उसका लेखक प्रवासी है और प्रवासी लेखक के रचे साहित्य को प्रवासी कहना क्यों अनुचित होना चाहिए? असल में विदेशों में भारतवंशियों द्वारा रचे साहित्य के लिए प्रवासी साहित्य इतना प्रचलित तथा लोकप्रिय हो गया है कि अब उसका प्रयोग बंद करना कठिन है। वैसे ही 'प्रवासी' शब्द इस साहित्य को हाशिये पर डालने तथा आरक्षण की सुविधा देने के लिए नहीं है। यह तो इस साहित्य की पहचान और विशिष्टता के लिए है। 'प्रवासी' शब्द लेखकों के अपमान के लिए नहीं, उनके सम्मान के लिए है। उनकी अलग पहचान के लिए है और उनके स्वतंत्र मूल्यांकन की परम्परा को आरम्भ करने के लिए है। हिन्दी के अधिकांश प्रवासी लेखकों को प्रवासी शब्द पर आपत्ति नहीं है। वे अपनी विशिष्टता के साथ हिन्दी की मुख्यधारा के अंग बने रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे क्यों अपनी पहचान, अपना अस्तित्व मुख्यधारा में विलीन करना चाहेंगे?

सुधा ओम ढींगरा : यहां मैं आपसे सहमत नहीं, हिन्दी के अधिकांश भारतवंशी लेखकों को प्रवासी शब्द पर आपत्ति है। विदेशी भाषाओं में 'प्रवासी' शब्द साहित्य के लिए प्रयोग नहीं किया जाता। अंग्रेजी में किसी भी देश में बैठकर लिखा गया साहित्य अंग्रेजी साहित्य होता है। मैं ऐसे बहुत से फ्रेंच लेखकों को जानती हूं, जो अमेरिका में बैठकर फ्रांसीसी भाषा में लिखते हैं, पर वे प्रवासी फ्रांसीसी लेखक नहीं, सिर्फ फ्रेंच लेखक कहलवाए जाते हैं। हिन्दी साहित्य में ऐसा क्यों है?

कमल किशोर गोयनका : मैं आपकी बात से सहमत हूं कि विदेशी भाषाओं के प्रवासी लेखकों के साहित्य को उन देशों में प्रवासी-साहित्य नहीं कहा जाता है। मेरा ज्ञान सीमित है, परन्तु रूस, चीन, जापान की क्या स्थिति है, कह नहीं सकता, किन्तु हिन्दी में प्रवासी लेखकों के साहित्य को यदि प्रवासी-साहित्य कहा जाता है तो यह हिन्दी का तथा साहित्य का अपमान कैसे हो गया? हिन्दी का प्रवासी साहित्य अपनी अलग पहचान चाहता है और हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा का भी अंग बने रहना चाहता है। यह ऐसे ही है, जैसे छायावाद, प्रगतिवाद, नयी कविता तथा कथा साहित्य में आंचलिक उपन्यास, नयी कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी आदि अपनी स्वतंत्रता सत्ता के साथ हिन्दी साहित्य का हिस्सा बनी रहीं। प्रवासी साहित्य के रचनाकार भारत के हिन्दी रचनाकारों की तुलना में भिन्न परिस्थितियों, भिन्न परिवेश तथा भिन्न संवेदनात्मक संसार में जीते हैं। उनके सम्मुख रचनात्मक दबाव तथा रचनात्मक सरोकार भी भिन्न-भिन्न हैं।

मॉरिशस के हिन्दी लेखकों की पीढ़ी तो उसी देश में जन्मी है, अतः वे अपने पूर्वजों के देश की अपेक्षा अपने देश की समस्याओं और तनावों में अधिक उलझे हुए हैं और उनकी रचनाओं में उनका देश अधिक बोलता है। वे हिन्दी में लिख रहे

हैं, इसलिए वे हिन्दी के साहित्यिक समाज के हैं, लेकिन प्रवासी साहित्य की उनकी अलग पहचान को हम मिटा नहीं सकते। अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशों के प्रवासी हिन्दी लेखकों की पहली पीढ़ी ही रचना-कर्म में संलग्न है। ये वे भारतीय हैं, जो उच्च-शिक्षा अथवा अच्छी नौकरी के लिए इन देशों में गये हैं। वहां आजीविका तथा सामाजिक जीवन अंग्रेजी भाषा से चलता है और ये रचना करते हैं अपनी मातृभाषा हिन्दी में। यह स्थिति उन्हें भारत के हिन्दी लेखकों से नितांत अलग बनाती है। ये चाहते तो अंग्रेजी भाषा में रचना कर सकते थे, लेकिन भाषा तथा देश-प्रेम उन्हें हिन्दी भाषा की ओर ले जाता है और वे स्वदेश-परदेश के द्वन्द्व में अपने रचनात्मक क्षणों को जीते हैं तथा मनोभूमि और संवेदात्मक संसार की सृष्टि करते हैं।

सुधा ओम ढींगरा : गोयनका जी, अभी आपने कहा मॉरिशस के हिन्दी लेखक तो क्या प्रवासी लेखकों को अमेरिका के हिन्दी लेखक, इंग्लैंड के हिन्दी लेखक, आस्ट्रेलिया के हिन्दी लेखक नहीं कहा जा सकता, भारतवंशी भी अपने देश और मातृभूमि से उसी तरह जुड़े हुए हैं जैसे भारतवासी, देश छोड़ देने से नाता और मोह तो नहीं छूट जाता।

कमल किशोर गोयनका : इस प्रवासी साहित्य में निश्चित ही नास्टेल्जिया है। अपने देश के जीवन और परिवेश से टूटकर दूसरे अनजान देश में जाकर रहने में अपनी मातृभूमि, परिवार, घर और साथियों की याद आना स्वाभाविक है। सुधा जी इस बात को मैं महसूस करता हूं कि अपना स्वदेश कितना ही अभिशप्त हो, लेकिन परदेश में वह भी प्रिय लगने लगता है। इस प्रकार प्रवासी लेखक के अंतर्मन में स्वदेश रहता है और उसका वर्तमान परदेश में जीता है। ऐसा लेखक दोहरा जीवन जीता है और इन दोहरे तनावों को, दोहरी संवेदनाओं को अपनी लेखनी से अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करता है। अपने देश से निष्कासन और परदेश की स्वीकृति-अस्वीकृति में अनिश्चियता उसे और भी अन्तर्द्वन्द्व तथा और भी मनोवैज्ञानिक दबाव में घेर लेती है। इस दोहरी मानसिकता का साहित्य केवल प्रवासी लेखक ही लिख सकता है और यदि इस कारण उसे प्रवासी-लेखक तथा प्रवासी-साहित्य कहा जाता है तो कुछ प्रवासी लेखकों को क्यों आपत्ति होती है। कुछ प्रवासी लेखक इस विशिष्टता को, इस नामकरण को आरक्षण देना मानते हैं, किन्तु मुझे ज्ञात नहीं है कि किसी प्रवासी लेखक ने आरक्षण की मांग की हो। जो स्वयं को कमजोर मानता हो या वास्तव में कमजोर हो, दुर्बल हो, अविकसित हो, वह स्वयं के लिए आरक्षण मांगता है। प्रवासी हिन्दी लेखक यह तो चाहता है कि उसे पढ़ा जाए, उसकी पहचान की जाए, किन्तु उसने कभी स्वयं को कमजोर एवं दुर्बल कहकर आलोचकों से आरक्षण की मांग नहीं की। अतः उसे स्तरहीन कहना अथवा आरक्षण मांगने वाला साहित्य कहना उसके अवमूल्यन का प्रमाण है। हिन्दी का प्रवासी साहित्य एक नयी साहित्यिक रचना-शैली की सर्जना कर सकता है। यदि प्रवासी हिन्दी लेखक अपने परदेश की साहित्यिक परम्पराओं तथा वहां की आधुनिक साहित्य प्रवृत्तियों का संगम हिन्दी रचनाओं के साथ कर सकें तो हिन्दी पाठक को एक नयी संवेदना एवं नयी संरचना का आनन्द मिल सकता है। यह नयी संवेदना अब नयी सदी में 'प्रवासी विमर्श' के रूप में स्थान बना चुकी है।

सुधा ओम ढींगरा : गोयनका जी विदेशों में रचे जा रहे साहित्य पर एक मोहर सी लगा दी गयी है कि वह 'नॉस्टेल्जिक' साहित्य है। आपने भी कहा कि 'इस प्रवासी साहित्य में निश्चय ही नॉस्टेल्जिया है। क्या साहित्य सृजन के लिए विषयों की कोई कसौटी है? 'नॉस्टेल्जिया' साहित्य में वर्जित है? अगर हम हिन्दी साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालें तो बहुत-सा साहित्य उसी स्थान, परिवेश और लोगों को लेकर लिखा गया है, जहां से लेखक आया होता है, जहां से लेखक 'बिलोंग' करता है, चाहे वह गांव छोड़कर नगर में आ जाए या नगर छोड़कर महानगर में चला जाए। मैं साहित्य को जो थोड़ा-बहुत जान पायी हूं कि साहित्य संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है और संवेदनाओं की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती, हां, उनको ट्रीट कैसे किया गया है और लेखक के शिल्प और किस कुशलता से उसकी अभिव्यक्ति हुई है, उसकी परख होनी चाहिए।

कमल किशोर गोयनका : सुधा जी, मैंने भारतवंशियों के भारतेतर देशों में रचे साहित्य को 'नॉस्टेल्जिया साहित्य' नहीं कहा और उस पर न ही इसकी मोहर लगाई है। यह आरोप तो प्रगतिशील लेखक लगाकर उसकी अवमानना करना चाहते हैं। मेरा यह विचार है कि प्रवासी साहित्य में 'नॉस्टेल्जिया' एक प्रवृत्ति है और प्रवासी लेखकों में मिलती है, परन्तु यह प्रवृत्ति तो आपको हर भाषा तथा हर देश के साहित्य में मिलेगी। मॉरिशस के महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट में हिन्दी विभाग की अध्यक्षा डॉ. राजरानी गोविन ने तो अपना शोध-प्रबन्ध हिन्दी काव्य में 'नॉस्टेल्जिया' पर ही लिखा है और वह दिल्ली विश्वविद्यालय में पी-एच. डी. के लिए स्वीकृत हुआ। हिन्दी में जो आलोचक 'नॉस्टेल्जिया' की आलोचना करते हैं, वे मनुष्य की अपनी भूमि, परिवार, आंचल, प्रकृति आदि से जुड़े रहने की प्रवृत्ति से अनभिज्ञ लगते हैं। अतः मेरा दृढ़ मत है कि साहित्य में 'नॉस्टेल्जिया' वर्जित नहीं हो सकता। यह मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। यदि कोई कवि या लेखक 'नॉस्टेल्जिया' में जीवित रहता है तो हम इसी कारण उसकी आलोचना नहीं कर सकते। लेखक जब अतीतजीवी होता है, तब भी वह वर्तमान से ही देखता है। अतः साहित्य में कोई विषय वर्जित नहीं है, इसका द्वार तो मनुष्य ही नहीं, जीव-सृष्टि और ब्रह्मांड की

सभी दिशाओं तक खुलता है। अब तो साहित्य में वर्जनाओं की जंजीरें टूट चुकी हैं। संस्कृत आचार्यों ने नाटक और काव्य में जो वर्जनाएं स्थापित की थीं, वे सब टूट चुकी हैं।

मैं पूर्णतः आपसे सहमत हूं कि लेखक जिस परिवेश, प्रकृति और समाज के बीच रहकर बड़ा हुआ है तथा लेखनी पकड़ी है, उसका प्रतिबिम्ब उसके साहित्य में अवश्य आएगा। हिन्दी में अनेक लेखक गांव से शहर में आए हैं और उनके साहित्य में गांव की सुगन्ध मिलेगी। लेखक अपने परिवेश और समाज में जी कर उसे ही अपनी संवेदनाओं का आधार बनाता है। इस पर भी लेखक गांव से शहर, शहर से गांव, भारत से अमेरिका आदि कहीं भी संवेदनाओं, कथाओं, पात्रों और समस्याओं को अपने साहित्य में स्थान दे सकता है। निश्चय ही संवेदनाओं की कोई सीमा नहीं, वे सीमा रहित हैं, उनकी कोई परिधि नहीं, उन पर कोई बन्धन नहीं। जहां तक परख का सवाल है, मूल्यांकन में उसका कथांचल, परिवेश के साथ उसका मन्तव्य तथा अभिव्यक्ति के स्वरूप आदि सभी को देखना होगा। आलोचना एवं सही मूल्यांकन में संवेदना के साथ उसके ट्रीटमेंट दोनों को ही देखना होगा। साहित्य का एक सिद्धान्त है। वस्तु ही अभिव्यक्ति के स्वरूप को तय करती है। वस्तु अर्थात् संवेदना के स्वरूप के कर्म को जाने बिना उसकी अभिव्यक्ति का मूल्यांकन कैसे हो सकता है? अतः जब भी हिन्दी के प्रवासी साहित्य का मूल्यांकन होगा, हमें प्रवासी संवेदना की कसौटी से ही उसकी परीक्षा करनी होगी।

सुधा ओम ढींगरा : गोयनका जी, कहीं ऐसा तो नहीं कि पत्रिकाओं के सम्पादक प्रवासी विशेषण का प्रयोग पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए करते हैं।

कमल किशोर गोयनका : यह सत्य है कि विदेशों में रचा साहित्य जब हिन्दी में 'प्रवासी कहानी', 'प्रवासी उपन्यास' या 'प्रवासी कविता' के रूप में आता है तो वह पाठकों का ध्यान ज्यादा आकर्षित करता है। हिन्दी समाज विदेशों में रहने वाले अपने देशवासियों के जीवन को जानना चाहता है, उसे समझना चाहता है और स्वाभाविक भी है कि उनके मन में विदेश की प्रति उत्सुकता, जिज्ञासा और ललक बढ़ती है और वह समझने लगता है कि विदेशों में सब कुछ स्वर्ग-तुल्य ही नहीं है। वहां का जीवन-संघर्ष कठोर, एकांत एवं काफी अनुशासित है तथा वहां डालर पेड़ पर नहीं लगते। उन्हें जीवन को अर्पित करके ही पाया जा सकता है। हिन्दी का प्रवासी साहित्य भारतीय पाठकों को प्रवासी जीवन की कठोर तथा भयावह वास्तविकताओं से परिचित कराता है और इसकी भी अनुभूति कराता है कि उपयुक्त ज्ञान और योग्यता से ही जीवन की उच्चता तक पहुंचा जा सकता है। वहां प्रवासी भारतीय में पश्चिम और पूर्व का जो द्वन्द्व है तथा एक सर्वथा नयी संस्कृति में जीने की जो विवशता है तथा अपनी अस्मिता और अपनी पहचान खो जाने का जो भय है, वह भी हिन्दी पाठकों की अनुभूति का अंग बनता है और वह अपने देश और संस्कृति के प्रति अधिक समर्पित तथा सम्मान का भाव रखता है। भारत के पाठकों के लिए प्रवासी साहित्य का यह योगदान कम नहीं है और यह तभी सम्भव है, जब हम हिन्दी के प्रवासी साहित्य को प्रवासी-साहित्य के रूप में पढ़ें और समझें।

सुधा ओम ढींगरा : जो शब्द इतनी चर्चा में है, उसका उद्भव और उद्भावक जरूर जानने की इच्छा है। आपने तो प्रवासी साहित्य पर अनगिनत पुस्तकें लिखी हैं। इस शब्द पर शोध जरूर किया होगा।

कमल किशोर गोयनका : मैंने इस विषय में शोध तो नहीं किया है, किन्तु मेरे पास जो जानकारी है, वह मैं आपको बता देता हूं। महात्मा गांधी और उस समय अनेक भारतीय उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड गये थे, तब 'इम्मीग्रेशन' के अर्थ में 'अप्रवासी' एवं 'प्रवासी' शब्दों का प्रयोग शुरू हुआ। गांधी जब दक्षिण अफ्रीका गये और वहां लगभग 14 वर्ष तक रहे तो उन्होंने वहां के प्रवासी भारतीय के स्वाभिमान और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया और तब समाचार-पत्रों तथा राजनीति में 'अप्रवासी' तथा 'प्रवासी' शब्दों का प्रयोग बार-बार होने लगा और बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में ये शब्द भारतीय जनमानस और समाचार-पत्रों में प्रचलित होने लगे। डॉ. कामिल बुल्के के अपने अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश में 'इम्मीग्रेशन' के लिए अप्रवास तथा 'इम्मिग्रेंट' को 'अप्रवासी' कहा है, लेकिन अब स्थिति यह है कि हिन्दी में 'अप्रवासी' और 'प्रवासी' दोनों का ही प्रयोग होता है और दोनों की अर्थ-व्यंजना में भी कोई अन्तर नहीं रह गया है।

हां, भारत में उस प्रवासी संसार के प्रति जिज्ञासा और उसके दुःख-दर्द को जनता तक पहुंचाने के लिए साहित्य का सहारा सबसे पहले प्रसिद्ध लेखक पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिया। कुछ संयोग ऐसा हुआ कि उनकी भेंट 15 जून, 1914 को पं. तोताराम से हुई, जो 21 वर्ष फिजी में रहकर लौटे थे। चतुर्वेदी जी ने 15 दिन तक उनके संस्मरण लिखे, जो सन् 1914 में ही 'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। इसके उपरान्त पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'प्रवासी भारतवासी' (1918), 'फिजी में भारतीय' तथा 'फिजी की समस्या' पुस्तकें लिखीं और वहां के प्रवासी भारतीय मजदूरों की समस्याओं की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया। गांधी के भारत आगमन पर चतुर्वेदी उनके सम्पर्क में आये और उन्होंने गांधी से कांग्रेस का 'प्रवासी विभाग' खोलने का आग्रह कियाा। कांग्रेस के सन् 1922 के अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ और इसकी कमेटी में केवल नेताओं को रखा गया। स्वाभाविक था, कांग्रेसी नेताओं की प्रवासी-संसार में कोई रुचि नहीं थी। चतुर्वेदी

हिन्दी के वरिष्ठ लेखक डॉ. कमल किशोर गोयनका को प्रतिष्ठित व्यास सम्मान से सम्मानित करते बाएं से
के.के बिरला फाउंडेशन के निदेशक सुरेश ऋतुपर्ण, साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष विश्वनाथ प्रसाद तिवारी और वरिष्ठ कथाकार मृदुला गर्ग

ने गांधी से शिकायत की तो गांधी ने उनसे कहा कि कांग्रेस वाले स्वयं तो कुछ करेंगे नहीं और न तुम्हें ही करने देंगे। आगे चलकर कलकत्ता कांग्रेस में पं. जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव पर 'प्रवासी विभाग' का गठन हुआ, लेकिन इस बार भी कुछ काम नहीं हुआ और चतुर्वेदी का 'प्रवासी-भवन' के निर्माण का स्वप्न साकार नहीं हुआ।

सुधा ओम ढींगरा : आप द्वारा दी गयी जानकारी से मालूम हुआ कि स्वतंत्रता से पूर्व भी कई भारतीय लेखकों ने विदेशों में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था।

कमल किशोर गोयनका : सुधा जी, यह वह समय था, जब 'चांद', 'मर्यादा', 'माधुरी' आदि हिन्दी पत्रिकाओं में मॉरिशस, फिजी आदि देशों में गये भारतीय मजदूरों के जीवन के बारे में यदाकदा लेख छपते रहते थे। 'चांद' मासिक पत्रिका ने अपना जनवरी, 1925 का अंक 'प्रवासी अंक' के नाम से प्रकाशित किया और इसमें मॉरिशस के प्रवासी भारतीय मजदूरों के यातनामय जीवन पर प्रेमचन्द की कहानी 'शूद्रा' प्रकाशित हुई, जो भारत के प्रवासियों पर लिखी गयी हिन्दी की पहली कहानी थी। 'चांद' के इस अंक से तथा प्रेमचन्द जैसे विख्यात कहानीकार की कहानी छपने से प्रवासियों को मुख्यधारा में लाने की चेष्टा की गयी, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि देश के स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन, दूसरे विश्व-युद्ध, गांधी के 'करो या मरो' आन्दोलन, देश के विभाजन आदि में प्रवासी-संसार कहीं खो गया और काफी समय तक अदृश्य बना रहा। मॉरिशस सन् 1968 में स्वतंत्र हुआ तो लेखकों एवं जनता का उसके प्रति आकर्षण बढ़ा और जब कैप्टन भगवान सिंह फिजी में भारत के राजदूत बने तो फिजी से सम्पर्क बढ़ा। इसी प्रकार इंग्लैंड में डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के उच्चायुक्त बनने पर वहां के प्रवासी हिन्दी साहित्य के विकास का नया युग शुरू हुआ। भारत सरकार ने डॉ. सिंघवी को प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को हल करने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति का अध्यक्ष बनाया और उन्होंने 'डायस्पोरा रिपोर्ट' प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट को सरकार ने स्वीकार किया और 9-11 जनवरी, 2003 को पहला 'प्रवासी भारतीय दिवस' आयोजित किया और इस प्रकार स्वतंत्रता के 55 वर्ष के बाद भारतीय प्रवासियों के साथ प्रवासी साहित्य एवं संस्कृति के प्रति देश में नयी चेतना, नयी प्रतिबद्धता और एक नयी संवेदना का उदय हुआ।

सुधा ओम ढींगरा : निष्कर्ष यह निकला कि 'प्रवासी-साहित्य' के उद्भव और विकास में गांधी जी, बनारसीदास चतुर्वेदी, लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जैसे महान व्यक्ति और 'चांद' पत्रिकाएं आदि रहे हैं।

कमल किशोर गोयनका : आप मेरी बात का यकीन कीजिए, इसके पीछे कोई साजिश, छल-कपट नहीं। किन्हीं लेखकों को प्रतिष्ठित करने तथा कुछ को हाशिये पर डालने के लिए यह नहीं हुआ था।

प्रवासी हिन्दी साहित्य समय की आवश्यकता थी। गांधी प्रवासी भारतीयों के दुःख-दर्द से मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे थे और मॉरिशस में सूर्यप्रसाद मंगर भगत, विष्णुदयाल, मधुकर, बखोरी आदि की एक पूरी पीढ़ी हिन्दी में साहित्य-रचना में प्रवृत्त हो रही थी। अभिमन्यु अनत की औपन्यासिक, कविता, नाटक आदि की कृतियों के निरन्तर प्रकाशित होने से भारत में प्रवासी साहित्य के प्रति उत्सुकता और पठनीयता में तीव्रता आयी और फिर अमेरिका, इंग्लैंड के हिन्दी लेखकों की कृतियों और पत्रिकाओं के प्रकाशन से इसकी गति में वृद्धि हुई और अब 'प्रवासी साहित्य' हिन्दी की एक वास्तविकता बन गया है।

अब 21वीं सदी में मॉरिशस के साथ अमेरिका, कैनेडा, इंग्लैंड, नार्वे, नीदरलैंड, जापान, आस्ट्रेलिया, आबूधाबी आदि देश भी साहित्य की रचना में प्रमुख रूप से शामिल हो गये हैं। विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य का विस्तार हो रहा है। उसका एक संसार बन चुका है, बस उसमें अब नयी पीढ़ी को लाने की आवश्यकता है। हिन्दी के इस साहित्य का रंग-रूप, उसकी चेतना, संवेदना एवं सृजन प्रक्रिया भारत के हिन्दी पाठकों के लिए एक नयी वस्तु है, एक नये भावबोध एवं नये सरोकार का साहित्य है। एक नयी व्याकुलता, बेचैनी तथा एक नये अस्तित्व बोध व आत्मबोध का साहित्य है, जो हिन्दी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नये साहित्य संसार से समृद्ध करता है। विदेशों में रहने वाले हिन्दी के साहित्यकार अपने देश के प्रति अधिक सजग एवं समर्पित हैं। इस साहित्य में एक ऐसी भारतीयता है, जो स्वदेश-परदेश के द्वन्द्व से जन्म लेती है और एक नया परिवेश, एक नयी जीवन दृष्टि तथा जीवन जीने का नया सरोकार देती है। हिन्दी की मुख्यधारा का यह साहित्य अंग है और अपनी पहचान भी रखता है और अब प्रवासी-विमर्श ही शुरू हो गया है।

सुधा ओम ढींगरा : गोयनका जी, मैं विषय परिवर्तन कर रही हूं। प्रवासी साहित्य के बारे में खूब जानकारी ले ली। अब मैं स्त्री-विमर्श की ओर मुड़ती हूं। स्त्री-विमर्श की तमाम बातों के बीच अक्सर ग्रामीण स्त्रियां, दलित स्त्रियां, आदिवासी स्त्रियां और मुस्लिम स्त्रियों की भागीदारी कम महसूस होती है। आप क्या सोचते हैं?

कमल किशोर गोयनका : साहित्य में ऐसा कभी नहीं हुआ कि आधी आबादी की सत्ता शून्य रही हो। 'रामायण' और 'महाभारत' में स्त्री की स्थिति एवं सत्ता तथा उनके शील-सम्मान की रक्षा के लिए पुरुषों द्वारा किये गये महायुद्धों की हमें जानकारी है। आधुनिक काल में 'साकेत', 'कामायनी', 'गोदान' आदि में भी हमें एक स्त्री-विमर्श दिखाई देता है। आधुनिक समय में लेखिकाओं की भी बड़ी संख्या देखी जा सकती है, जो स्त्री के विविध पक्षों का अपनी रचनाओं में उद्घाटन कर रही हैं। हिन्दी में स्त्री-विमर्श पर बराबर बहस हो रही है और ग्रामीण, दलित एवं आदिवासी स्त्रियों को भी स्थान मिल रहा है, यह अलग बात है कि यह उस मात्रा में नहीं है, जितना आप अपेक्षित समझती हैं। इधर मैंने, 'कुच्ची का कानून' कहानी पढ़ी है, जिसमें एक ग्रामीण स्त्री अपनी कोख पर अपने अधिकार का बड़ा प्रश्न उठाती है। मुझे इस समय देश में स्त्री-चेतना का विस्तार दिखाई देता है और सर्वत्र स्त्री-जागृति दिखाई देती है। स्वाभाविक है, इस स्त्री-जागृति में देश के विभिन्न वर्गों की स्त्रियों के चेहरे अवश्य ही दिखाई देंगे।

सुधा ओम ढींगरा : क्या आपको नहीं लगता कि स्त्री की शारीरिक कमजोरी को, जो कि प्राकृतिक है, पुरुष सत्ता ने उसके शोषण का प्रमुख हथियार बना लिया है, जो सदियों से आज तक उसी रूप में जारी है। इस पुरुष मानसिकता को किस प्रकार बदला जा सकता है?

कमल किशोर गोयनका : आपने महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है, परन्तु इसके उत्तर में प्रकृति के सत्य को देखना एवं समझना होगा। आपने स्त्री की शारीरिक कमजोरी को प्रकृतिप्रदत्त माना है, जोकि सत्य है। पुरुष की शारीरिक सबलता और स्त्री की शारीरिक दुर्बलता प्रकृति की रचना का परिणाम है अतः इस वास्तविकता को ध्यान में रखकर ही कार्य क्षेत्र तय कर दिया था। पुरुष अपनी शक्ति से भोजन, सुरक्षा आदि का कार्य करता था और स्त्री संतानोत्पत्ति एवं परिवार की रचना करती थी और इस प्रकार मानव-संस्कृति के निर्माण में दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। एक और तथ्य पर आप विचार करें, प्रकृति ने पुरुष को आक्रामक (offensive) तथा स्त्री को सुरक्षात्मक (defensive) बनाया है। यदि दोनों ही आक्रमक अथवा सुरक्षात्मक होते तो मानव संस्कृति का वर्तमान स्वरूप नहीं होता। अब आपकी बात, प्रकृति में शक्तिशाली दुर्बल को दबाता रहा है, उसे अपना भोजन बनाता रहा है, लेकिन पुरुष ने संस्कृति के विकास के साथ सीखा है कि स्त्री शारीरिक रूप से कमजोर है तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह अन्य जीवों के समान उसका भक्षण करे, शोषण-दमन करे। यह सच है कि पुरुष अपनी सशक्तता का अनेक बार दुरुपयोग करता है। स्त्री को दासी समझने लगता है और यह भारत में ही नहीं, अनेक देशों में होता है, बल्कि मुस्लिम परिवारों में तो स्त्री तलाक के भय के कारण सारा जीवन पुरुष की दासता में निकाल देती है, परन्तु शिक्षा के साथ तथा मानवाधिकार आन्दोलन के कारण एवं आधुनिक जीवन की परिस्थितियों के कारण भारतीय पुरुष स्त्री की सत्ता की महत्ता को समझने लगा है और वह सहयोगी व सहचर बनने का प्रयत्न कर रहा है। इस समस्या का हल भारतीय दर्शन 'अर्द्धनारीश्वर' में है; जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों समान हैं, वहां पुरुष अपनी सबलता से श्रेष्ठ नहीं है और

स्त्री अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण निम्न नहीं है।

सुधा ओम ढींगरा : आप देश-विदेश घूमे हैं। आपने स्त्रियों की स्थिति में क्या अन्तर पाया है?

कमल किशोर गोयनका : हमारा समय भूमंडलीकरण का है और विश्व एक गांव के रूप में सिकुड़ गया है, परन्तु अनेक देशों की अपनी-अपनी विशिष्टता अभी भूमंडलीकरण में विलीन नहीं हुई है। ब्रिटेन का भी यूरोपीय संघ से अलग होना इसका प्रमाण है कि वह अपने राष्ट्रीय चरित्र को बचाए रखना चाहता है। यही स्थिति भारत की है। इस समय भारत पश्चिमी सभ्यता के गहरे दबाव में है और इंटरनेट, मोबाइल आदि ने तो विश्व की गंदी-से-गंदी चीजों को भारत में उपलब्ध करा दिया है; जिनका प्रभाव हमारे समाज पर पड़ रहा है। असल में अंग्रेजी शासन के साथ ही भारत में पश्चिमी सभ्यता की प्रवृत्तियां भी आने लगी थीं। प्रेमचन्द ने मुम्बई से लौटकर 'मिस पद्मा' तथा 'जीवन का शाप' कहानियां लिखी थीं। इनमें 'मिस पद्मा' में 'लिव-इन-रिलेशनशिप' की कहानी है और 'जीवन का शाप' में पुरुषों के समान स्त्रियां परपुरुषों के साथ यौन सम्बन्धों को उचित मानती हैं। स्वतंत्रता के बाद और अब तक भारतीय स्त्री ने स्वतंत्रता के साथ विविध क्षेत्रों में उन्नति की है तथा कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है; जहां भारतीय स्त्री ने अपनी उपस्थिति अंकित न की हो। अब तो वे प्रतियोगी परीक्षाओं में पुरुषों को पछाड़ने लगी हैं और लड़ाकू विमान तक चला रही हैं और सेना में भरती हो रही हैं। इधर स्त्री अपने शरीर का भी उपयोग कर रही है और राजेन्द्र यादव के अनुसार स्त्री के पास अपना शरीर है और वह इसका उपयोग करके आगे बढ़ रही है। भारत में यह प्रवृत्ति बढ़ रही है, परन्तु समाज में यौन शुचिता, संयम, मर्यादा आदि खत्म नहीं हुए हैं। भारत और अमेरिका में स्त्री की स्थिति तथा पुरुष की मनोदशा के अंतर का एक उदाहरण पर्याप्त होगा। मैं सपत्नी अपने बेटे के पास अमेरिका गया था, तब बेटे ने कुछ मित्रों को बुलाया हुआ था। एक अमेरिकी युगल से परिचय हुआ तो मैंने अपनी पत्नी कुसुम गोयनका का उनसे परिचय कराया तो उस अमेरिकन ने मुझसे पूछा कि यह आपकी कौन-सी पत्नी हैं? मैंने उत्तर दिया कि हम पति-पत्नी के रूप में 50 वर्षों से एक साथ रह रहे हैं तो वह आश्चर्यचकित रह गया और मेरी मूर्खता (?) पर हँसते हुए बोला कि यह असम्भव है। उसने फिर अपनी पत्नी से हमारा परिचय कराया और कहा कि यह मेरी सातवीं पत्नी है। मैं छह को तलाक दे चुका हूं। मैंने कहा कि आप पति-पत्नी का सात जन्मों तक साथ रहने का दर्शन नहीं समझ सकते। इसी प्रकार अमेरिका के एक प्रवासी हिन्दी लेखक की कहानी में मां और बेटी एक साथ अपने-अपने बॉयफ्रेंड से मिलने को तैयार होती हैं और बेटी मां को सुसज्जित करती है। भारत अभी इस स्त्री मुक्ति तथा यौन-स्वाधीनता से बचा हुआ है।

सुधा ओम ढींगरा : आप आजकल केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल तथा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष हैं। इस पद को संभाल कर आप क्या ठोस कदम उठा रहे हैं; जिसमें कुछ परिवर्तन आ सकें।

कमल किशोर गोयनका : ये संस्थाएं भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन हैं। इस मंत्रालय का मंत्री इनका अध्यक्ष होता है और उपाध्यक्ष इनकी देखभाल करता है तथा अध्यक्ष को आवश्यक जानकारी देता है। संस्थान विदेशी छात्रों को एवं अहिन्दी क्षेत्र के विद्यार्थियों को हिन्दी का शिक्षण देता है। अहिन्दी क्षेत्र के हिन्दी अध्यापकों को प्रशिक्षण देता है और संध्या को अनुवाद, पत्रकारिता आदि के कोर्स चलाता है। भारत सरकार की नीति के अनुसार पूर्वोत्तर भारत के मेघालय प्रान्त के नगर शिलांग में नये भवन का शिलान्यास किया है और जम्मू में हिन्दी शिक्षण केन्द्र स्थापित करने का निर्णय किया है। मैं श्रीलंका गया था। वहां यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि युवक-युवतियों में हिन्दी का क्रेज है और वे हिन्दी सीखने के लिए उत्साही हैं और भारत आना चाहते हैं। मैंने कई बंद योजनाएं शुरू कराई हैं और हिन्दी लघु ज्ञान कोश के तीन खंड शीघ्र ही प्रकाशित हो जाएंगे। शेष सात खंडों पर कार्य हो रहा है और हमें देश के प्रतिष्ठित विद्वानों का सहयोग मिल रहा है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान 14 हिन्दी विद्वानों, लेखकों, प्रचारकों को एक-एक लाख के पुरस्कार देता था, परन्तु अब इनकी संख्या 26 है तथा राशि भी एक लाख से पांच लाख हो गयी है। यह एक बड़ी उपलब्धि है। हम अब अहमदाबाद, हैदराबाद, गुवाहाटी आदि स्थानों पर अपने भवन बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन सब कार्यों में वर्तमान निदेशक प्रो. नंदकिशोर पाण्डेय यथाशक्ति कार्य कर रहे हैं।

सुधा ओम ढींगरा : आप कुछ-न-कुछ नया करते रहते हैं। इधर नया क्या करने की योजनाएं हैं।

कमल किशोर गोयनका : नव्यता जीवन को गतिशील बनाती है। आयु का बंधन रोकता है, परन्तु उत्साह कम नहीं होता। अभी कई कार्य बाकी हैं—'प्रेमचन्द विश्वकोश' के शेष खंड पूरे करने हैं, 'प्रेमचन्द उपन्यास रचनावली' पूरी करनी है तथा कई पुस्तकें प्रेस में जानी हैं। शरीर ने साथ दिया तो शेष बचे काम पूरा करके ईश्वर के पास जाना चाहूंगा। ईश्वर से मेरे लिए प्रार्थना करें।

101, Guymon Court, Marris Ville,
North Caroline, NC-27560 (U.S.A.)
Email: sudhadrishti@gmail.com